THE ECONOMIC TIMES

Date: 12-07-24

Women's Right Over 'Rights' of Customs

ET Editorials

A Supreme Court order on Wednesday finally ended the lack of clarity that has prevailed for four decades on the rights of illegally divorced Muslim women. The apex court asserted that any discrimination in matters of alimony under the country's secular laws would be regressive and against gender justice and equality. This is a much-needed, most welcome clarification. The court ruled that all Muslim women — including those who have been illegally divorced by the pronouncement of triple talaq, a cognisable offence under the Muslim Women (Protection of Rights on Marriage) Ordinance 2018 — are entitled to seek maintenance from their husbands as per Section 125 of the CrPC.

The separate but concurring judgments in Mohd Abdul Samad v. The State of Telangana give firmer grounding to the 2019 order by Justice Ahsanuddin Amanullah of the Patna High Court, which stated that a divorced Muslim woman could not be debarred from seeking maintenance under Section 125. Both orders underline that religion-neutral provisions of the law must override personal or religious laws. Not doing so violates Article 15(1), which prevents the state from discriminating on the grounds of religion, race, caste, sex or place of birth, and allows a person's identity as a citizen to take precedence over primordial identities. The top court's ruling has implications for Article 44, which says that the state shall endeavour to secure a uniform civil code 'throughout the territory of India'.

While both orders vindicate the struggles of Shah Bano, they will not be enough. Other supporting structures, such as implementation of law, timely legal help and constant social support, will be necessary if the court orders are to deliver their intended impact effectively.

THE HINDU

Date: 12-07-24

Secular remedy

Muslim women's right to maintenance under secular laws is well established.

Editorial

In holding that a divorced Muslim woman is not barred from invoking the secular remedy of seeking maintenance under the Code of Criminal Procedure (CrPC), the Supreme Court of India has done well to clarify an important question concerning the impact of a 1986 law that appeared to restrict their relief to what is allowed in Muslim personal law alone. The enactment of the Muslim Women (Protection of Rights on Divorce) Act, 1986, was a watershed moment that is seen as having undermined the country's secular ethos by seeking to nullify a Court judgment in the Shah Bano case (1985), which allowed a divorced Muslim woman to apply for maintenance from a magistrate under Section 125 of the CrPC. Subsequently, the 1986 law was upheld by a Constitution Bench in 2001 after coming close to declaring its provisions unconstitutional for discriminating against Muslim women. The Act was declared valid after the Bench read it down in such a way as not to foreclose the secular remedy for Muslim women. Several High Court judgments took different views on whether Muslim women should avail of Section 3 of the 1986 Act or Section 125 of CrPC. The latest verdict by a Bench of Justice B.V. Nagarathna and Justice Augustine George Masih settles this question by holding that the codification of a Muslim woman's rights in the 1986 Act — including the right to maintenance during the Iddat period, provision for a dignified life until she remarries, and return of mehr and dowry — was only in addition to and not in derogation of her right to seek maintenance like a woman of any other religion.

Justice Masih, in his main opinion, concludes that both the personal law provision and the secular remedy for seeking maintenance ought to exist in parallel in their distinct domains. While the CrPC may be invoked by a woman if she was unable to maintain herself, the 1986 Act makes it a Muslim husband's obligation to provide for his divorced wife and her children up to a certain point. Justice Nagarathna, in her concurring opinion, looks at the social purpose behind the provision for maintenance in the CrPC, namely that it aims to prevent vagrancy among women by compelling the husband to support his wife. The 1986 Act codified the right available to a divorced Muslim woman in personal law. This right is in addition to, and not at the cost of, the rights available in existing law. The verdict is a great example of the Court using harmonious interpretation to expand the scope of rights as well as to secularise access to remedies. In the process, the Court has also neutralised the perception that the right of Muslim women to seek maintenance under secular provisions stood extinguished since 1986.

दैनिक भास्कर

Date: 12-07-24

महिलाओं के हक में आया फैसला एक मिसाल है

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट की दो सदस्यीय बेंच ने दो अलग-अलग लेकिन सहमति के साथ दिए अहम फैसलों में तलाकशुदा मुस्लिम महिलाओं को भी गुजारा भत्ते का हकदार माना है। कोर्ट के अनुसार सन् 1986 के मुस्लिम महिला कानून की धारा 3 में- 'किसी भी अन्य कानून में किसी बात के होते हुए भी...' का मतलब यह नहीं है कि

सीआरपीसी की धारा 125 में वर्णित गुजारा भत्ते का प्रावधान खत्म हो जाता है, बल्कि दोनों को एक साथ देखना होगा। दरअसल शाहबानो फैसले को प्रभावहीन करने के लिए सन् 1986 में बने इस कानून में केवल 'इद्दत' के तीन महीनों तक भरण पोषण का प्रावधान है। सुप्रीम कोर्ट की नई व्याख्या के बाद मुस्लिम महिलाओं के जीवन में एक और बड़ा सवेरा आएगा और वे कानूनन अपना हक ले सकती हैं। सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले के बाद संसद ने सन् 2019 में तीन तलाक प्रथा खत्म की थी। अब इस नए फैसले के बाद सीआरपीसी की धारा 125 (जिसे इस फैसले में सेक्युलर कहा गया) मुस्लिम महिला कानून सरीखे स्पेशल एक्ट पर प्रभावी रहेगी, यानी गुजारा भत्ता जैसे मामलों में अपराध कानून, पर्सनल लॉ के ऊपर रहेगा। इसके साथ ही जस्टिस बीवी नागरत्ना ने अपने फैसले के अंतिम पांच पैराग्राफ में देश की जनता से अपील की है कि गृहणियों (जो कमाती नहीं हैं) को भी आर्थिक स्वायत्तता दें।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 12-07-24

गरीबी से निजात

संपादकीय

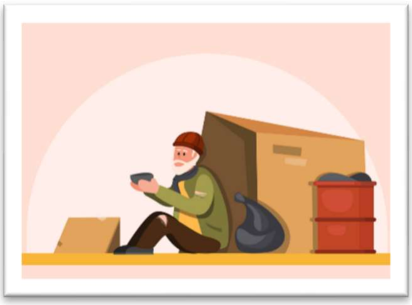

हाल के वर्षों के विभिन्न अनुमानों से यह संकेत मिलता है कि देश में गरीबी के स्तर में काफी कमी आई है। अगर गरीबी के दायरे में आने वाले परिवारों को बचाया जा सका तो परिणाम और बेहतर होंगे। नैशनल काउंसिल फॉर एप्लाइड इकनॉमिक रिसर्च ने इस बारे में एक नया शोध पत्र प्रकाशित किया है जिसमें नागरिकों के लिए सुरक्षा ढांचे को नए सिरे से तैयार करने की बात कही गई है। 'रीथिंकिंग सोशल सेफ्टी नेट्स इन अ चेंजिंग सोसाइटी' शीर्षक वाले इस शोध पत्र में कहा गया है कि 2011-12 में 21.2 फीसदी से 2022-24 में 8.5 फीसदी तक गरीबी के स्तर में उल्लेखनीय कमी आई है। यह आकलन तेंडुलकर गरीबी रेखा के आधार पर किया गया है। भारत मानव विकास सर्वेक्षण 2004-05, 2011-12 और 2022-23 के आंकड़ों का इस्तेमाल करके शोध पत्र में कहा गया है कि 2024-25 में जिन 8.5 फीसदी लोगों को गरीबों के रूप में चिह्नित किया गया उनमें से 3.2 फीसदी 2011-12 से ही गरीब बने हुए हैं जबकि 2.3 फीसदी लोग नए सिरे से गरीबी के शिकार हुए हैं।

अध्ययन में इस बात को रेखांकित किया गया है कि पुरानी गरीबी का स्तर कम हुआ है जबकि अस्थायी गरीबी बढ़ी है। ऐसे मामलों में परिवार समय-समय पर गरीबी के भंवर में गिरते और उससे उबरते रहते हैं। इसमें बार-बार गरीबी के शिकार होने वाले परिवारों को संवेदनशील ठहराते हुए कहा गया है कि गरीबी रेखा और

उससे 200 फीसदी ऊपर तक के परिवार इस श्रेणी के हैं। कई अकादमिक अध्ययनों में भी इस बात के प्रचुर प्रमाण मिले हैं जो ऐसी संवेदनशीलता बढ़ाने वाले कारकों को चिह्नित करते हैं। उदाहरण के लिए परिवार में बड़ी संख्या में बच्चों का होना या एक परिवार में आश्रितों की संख्या अथवा भूमिहीनता की स्थिति लोगों के संवेदनशील होने की संभावना बढ़ा देते हैं। हरी झटके मसलन प्राकृतिक आपदा, परिवार का ध्यान रखने वाले मुखिया की बीमारी या उसकी मौत अथवा पेशाजनित अवसरों में कमी भी परिवारों को किसी भी समय गरीबी के दुष्चक्र में उलझा सकती है। देखा तो यह भी गया है कि सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के परिवार मसलन अनुसूचित जाति और जनजाति के परिवार अथवा अल्पसंख्यक समुदाय के परिवार इस तरह के जोखिम में अधिक होते हैं।

शोध मे गरीबी की गतिशील प्रकृति को रेखांकित किया गया है और सामाजिक सुरक्षा उपायों को लक्षित करने की मौजूदा व्यवस्था की कमियों को उजागर किया गया है। मौजूदा व्यवस्था गरीबी रेखा के नीचे के संकेतकों पर आधारित है और उसकी अपनी सीमाएं हैं जो इसके असर को कम करती हैं। पहली बात, गरीबी रेखा को लेकर ही काफी बहस है। आलोचक कहते हैं कि गरीबी रेखा की सीमा मनमाने ढंग से तय की गई है जो किसी तरह केवल जीवित रहने से संबंधित है। हालांकि हालिया परिवार खपत व्यय सर्वे के आंकड़े बहस के कुछ पहलुओं का समाधान कर सकते हैं। यह भी देखा जाना है कि क्या यह मसले को हल कर सकता है या नहीं। दूसरी बात, गरीबी की गतिशील प्रकृति को देखते हुए, खासतौर पर संवेदनशील समूहों के मामले में, समय पर आंकड़े नहीं मिलने से परिणाम प्रभावित होते हैं।

अगर सर्वेक्षण समयबद्ध नहीं हुए तो वे परिवारों की आर्थिक स्थिति में बदलाव को सही ढंग से दर्ज नहीं कर पाते। इससे गरीबी के नए उभरते परिदृश्य को हल करना मुश्किल होता है। इसके अलावा बीपीएल कार्ड से कई लाभ जुड़े हैं, फिर चाहे उसे धारण करने वाला गरीब हो या नहीं। इससे भी व्यवस्थागत दिक्कत और संसाधनों का गलत आवंटन सामने आता है। भारत को अपनी संवेदनशील आबादी की जरूरतों को हल करने के लिए बेहतर व्यवस्था की आवश्यकता है। इसके लिए सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था को नए सिरे से अधिक समावेशी बनाना होगा। संबंधित कदमों में संवेदनशील समूहों से संबंधित आंकड़े जुटाना, व्यापक निगरानी रणनीति तैयार करना और जोखिम से बचाव आदि शामिल होंगे। कार्यक्रम का डिजाइन तैयार करने में लचीलापन कमजोर पहलों में सुधार लाने वाला हो सकता है जबकि रोजगार के अवसर तैयार करना भी जरूरी है। देश में समतापूर्ण और संतुलित विकास के लिए सामाजिक सुरक्षा को बदलते आर्थिक परिदृश्य के साथ तालमेल वाला बनाना अहम है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 12-07-24

प्रगतिशील फैसला

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट ने बुधवार को तलाकशुदा मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों भारतीय राजनीति और समाज पर दूरगामी असर पड़ेगा। वस्तुतः शीर्ष अदालत का यह फैसला भारतीय समाज के एक विशेष धार्मिक समूह में मौजूद जड़ता, यथास्थितिवाद को तोड़ने वाला साबित होगा। यह एक प्रगतिशील फैसला है जिसमें मुस्लिम समाज की पीड़ित तलाकशुदा महिलाओं के भरण-पोषण के अधिकार सुरक्षित हो पाएंगे। धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और सभ्य समाज के सभी लोगों ने सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले का स्वागत किया है। न्यायमूर्ति नागरत्ना और ऑगस्टीन जॉर्ज मसीह की पीठ ने अपने फैसले में कहा है कि तलाकशुदा मुस्लिम महिलाएं दंड प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) की धारा 125 (गुजारा भत्ता प्राप्त करने का प्रावधान) सभी विवाहित महिलाओं पर लागू होती है, जिसके दायरे में मुस्लिम महिलाएं भी आती हैं। शीर्ष अदालत ने तलाकशुदा, बेसहारा और अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ महिलाओं की आर्थिक और आवासीय सुरक्षा सुनिश्चित करने और उन्हें सशक्त बनाने पर जोर दिया है। सुप्रीम कोर्ट ने मुस्लिम महिला अधिनियम, 1986 और सीआरपीसी की धारा 125 दोनों की व्याख्या करते हुए यह व्यवस्था दी है कि 1986 के कानून से सीआरपीसी की धारा 125 में दिए गए अधिकार समाप्त नहीं हो जाते। लोगों को याद होगा कि 1985 में शाहबानो का मामला बहुत चर्चित हुआ था और इस मामले ने तब की राजनीति को गहरे तक प्रभावित किया था। शाहबानो ने अपने पति मो. अहमद खान से तलाक के बाद मुआवजा के लिए सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया था। कोर्ट ने मुआवजा देने का आदेश पारित किया था लेकिन मुस्लिम समुदाय के विरोध के कारण तब की राजीव गांधी सरकार ने संसद में कानून बनाकर शीर्ष अदालत के फैसले को पलट दिया था। तब से अब तक भारतीय राजनीति की धारा बहुत बदल गई है। अब कांग्रेस ने भी इस फैसले का स्वागत किया है। भाजपा का तो यहचुनावी मुद्दा ही रहा है। जाहिर है कि उसने भी स्वागत किया है। बहरहाल, इस मानवीय और कल्याणकारी फैसले से तलाकशुदा मुस्लिम महिलाओं के जीवन में नई रोशनी आएगी।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 12-07-24

इस प्रगतिशील फैसले का स्वागत कीजिए

कुरबान अली, (वरिष्ठ पत्रकार)

सुप्रीम कोर्ट ने एक ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए कहा है कि अब तलाकशुदा मुस्लिम महिलाएं भी भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) की धारा 125 के तहत अपने पूर्व पति से गुजारा-भत्ता मांग सकती हैं। सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला कई मायनों में अहम है और देश में समान नागरिक संहिता (यूनिफॉर्म सिविल कोड) लागू करने की दिशा में एक अहम मोड़ है। यह फैसला सन् 1985 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा ही शाह बानो मामले में मुस्लिम तलाकशुदा महिला को गुजारा-भत्ता दिए जाने के निर्णय का समर्थन करता है और तत्कालीन राजीव गांधी सरकार द्वारा संसद में संविधान संशोधन करके तलाकशुदा मुस्लिम महिलाओं को उनके अधिकारों से वंचित किए जाने के कदम को गलत ठहराता है, इसलिए इसका स्वागत किया जाना चाहिए।

सुप्रीम कोर्ट के दो जजों, न्यायमूर्ति बीवी नागरत्ना और जस्टिस ऑगस्टीन जॉर्ज मसीह ने अलग-अलग, पर एक जैसा फैसला सुनाते हुए कहा कि 'कुछ पति इस तथ्य से अवगत नहीं हैं कि पत्नी, जो एक गृहिणी होती है, की पहचान भावनात्मक और अन्य तरीकों से उन पर ही निर्भर होती है।' अदालत ने यह भी कहा है कि 'एक भारतीय विवाहित महिला को इस तथ्य के प्रति सचेत होना चाहिए, जो आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं है। इस तरह के आदेश से सशक्तीकरण का अर्थ है कि संसाधनों तक उसकी पहुंच बनती है। हमने अपने फैसले में 2019 के अधिनियम के तहत अवैध तलाक के पहलू को भी जोड़ा है। हम इस निष्कर्ष पर हैं कि सीआरपीसी की धारा-125 सभी महिलाओं (लिव-इन समेत) पर लागू होगी, न कि केवल विवाहित महिलाओं पर।

सुप्रीम कोर्ट की पीठ ने यह फैसला सुनाते हुए एक मुस्लिम शख्स मोहम्मद अब्दुल समद की उस याचिका को खारिज कर दिया, जिसमें सीआरपीसी की धारा-125 के तहत तलाकशुदा पत्नी के पक्ष में अंतरिम भरण-पोषण के आदेश को उसने चुनौती दी थी। अदालत ने साफ किया कि मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986, सीआरपीसी की धारा-125 के प्रावधानों को रद्द नहीं करता।

दरअसल, इस प्रकरण की शुरुआत तेलंगाना के 'फैमिली कोर्ट' के उस फैसले से हुई, जिसमें समद को तलाक के बाद अपनी पूर्व पत्नी आगा को हर महीने 20,000 रुपये गुजारा भत्ता देने को कहा गया था। आगा ने सीआरपीसी की धारा-125 के अंतर्गत फैमिली कोर्ट में गुजारे-भत्ते की गुहार लगाई थी और यह कहा था कि समद ने उन्हें 'तीन तलाक' दिया है। अब्दुल समद ने इस फैसले के खिलाफ हाईकोर्ट में अपील की। हाईकोर्ट ने कहा कि इस मामले में कई सवाल उठाए गए हैं, जिन पर फैसला लेना होगा, लेकिन साथ ही उसने याचिकाकर्ता समद को 10,000 रुपये प्रतिमाह अंतरिम भत्ता देने को कहा। हाईकोर्ट के इसी निर्देश को चुनौती

देते हुए समद ने सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया और कहा कि हाईकोर्ट ने इस बात को नजरअंदाज कर दिया है कि 1986 का कानून एक खास कानून है और सीआरपीसी की धारा-125 की तुलना में उसे ही माना जाएगा, क्योंकि सीआरपीसी एक आम कानून है।

गौरतलब है, सन् 1985 के शाह बानो मामले के बाद से ही सुप्रीम कोर्ट लगातार अपने फैसलों में यह कहता आ रहा है कि तलाकशुदा मुस्लिम महिलाएं भरण-पोषण की हकदार हैं। 'तीन तलाक' के फैसले में भी सुप्रीम कोर्ट ने मुस्लिम महिला के भरण-पोषण के पहलू को स्पष्ट किया था। सन् 1986 के कानून के बाद तलाकशुदा मुस्लिम महिलाओं के भरण-पोषण के बारे में सुप्रीम कोर्ट ने अपना पहला फैसला साल 2001 में 'दानियाल लतीफी बनाम भारत सरकार' मामले में सुनाया था और एक तरह से 1986 में केंद्र सरकार द्वारा किए गए संविधान संशोधन को रद्द कर दिया था।

इस नए फैसले ने शाह बानो मुकदमे के बाद के घटनाक्रमों को फिर जेहन में जिंदा कर दिया है। उस मुकदमे में सुप्रीम कोर्ट के फैसले और उसे लेकर अस्सी के दशक में हुई राजनीति ने देश को काफी प्रभावित किया था। तब राजीव गांधी सरकार में राज्य मंत्री रहे और आजकल केरल के राज्यपाल आरिफ मुहम्मद खान ने सुप्रीम कोर्ट के फैसले का जोरदार समर्थन किया था। हालांकि, उनका वह कृत्य कांग्रेस के अधिकतर सांसदों और नेताओं को पसंद नहीं आया था। इसके अलावा, मुसलमानों की एकमात्र नुमाइंदगी करने का दावा करने वाली संस्था 'ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड' ने देशव्यापी स्तर पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले के खिलाफ आंदोलन शुरू कर दिया और राजीव गांधी सरकार पर दबाव बनाना शुरू कर दिया कि वह संविधान संशोधन कराकर इस फैसले को बदले।

गौरतलब बात यह है कि भाजपा, शिव सेना और वामपंथी दलों को छोड़कर लगभग सभी प्रमुख राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दलों ने मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड की इस नाजायज मांग का समर्थन किया था। राजीव सरकार के वरिष्ठ मंत्री ही नहीं, मोहसिना किदवई, मुफ्ती मुहम्मद सईद, जियाउर्रहमान अंसारी, सीके जाफर शरीफ, गुलाम नबी आजाद और नज्मा हेपतुल्लाह जैसे लोग भी इसी राय के थे कि शाह बानो मामले में आए सुप्रीम कोर्ट के फैसले को संसद के जरिये बदला जाए।

आखिरकार अपने दल के बहुमत के दबाव में कांग्रेस सरकार ने सुप्रीम कोर्ट के उस फैसले को संविधान संशोधन के जरिये बदलने का फैसला किया। तब जूनियर मंत्री आरिफ मुहम्मद खान ने विरोध-स्वरूप मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया। राजनीतिक विश्लेषकों के अनुसार, यहीं से देश में सांप्रदायिक राजनीति की शुरुआत हुई, जिसकी परिणति पहले अयोध्या में बाबरी मस्जिद का ताला खोले जाने और फिर उसके विध्वंस के रूप में हुई और भारतीय जनता पार्टी के सत्ता में आने का रास्ता साफ हुआ।

मुस्लिम तलाकशुदा महिला को न्याय दिलाने के बारे में सुप्रीम कोर्ट ने जो फैसला सुनाया है, उसके कई निहितार्थ हैं। एक तो यह कि जाब्ता फौजदारी (सीआरपीसी) में धर्म, संप्रदाय और जाति के आधार पर फैसले नहीं होने चाहिए और संविधान की जो मूल भावना है कि समान नागरिक संहिता बनाई जानी चाहिए उसका

अब वक्त आ गया है। दूसरे यह कि समान नागरिक संहिता के बारे में सरकार क्या सोचती है, उसका एक मसौदा देश की जनता के सामने पेश किया जाना चाहिए, ताकि उस पर आम सहमति बन सके और उसे जल्द से जल्द लागू किया जा सके और सबसे महत्वपूर्ण यह कि अदालतों के इस तरह के प्रगतिशील फैसलों का स्वागत किया जाना चाहिए।